REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 13 | ISSUE - 7 | APRIL - 2024

' यासि रासा त ' में यथार्थ और लोक आख्यान

डॉ. कस्तूरी चक्रवर्ती
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग कोकराझार गवर्नमेंट कॉलेज, असम

सारांश :

हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक डॉ.गुलाब राय के शब्दों में -"यथार्थ वह जो नित्य प्रति हमारे सामने घटता है। उसमें पाप-पुण्य, धूप-छाँव और सुख-दुख मिश्रित रहता है। यह सामान्य भाव-भूमि के समतल रहता है और वर्तमान की वास्तविकता में सीमाबद्ध रहता है। वर्ग के स्वर्णिम सपने उसके लिए परी देश की वस्तु है जो उसकी पहुँच से बाहर है। भविष्य उसके लिए कल्पना का खेल है वह संसार के हाहाकार और करूण क्रंदन का यथातथ्य वर्णन करता है।"[1]

विनोद कुमार शुक्ल की उपन्यास 'यासी रासा त' में अपने माता-पिता के अस्तित्व और मानव जीवन की किसी एक घटना का वर्णन होता है। वही उपन्यास में समग्र मानव जीवन का सम्पूर्ण चित्र है, इसलिए उपन्यास का क्षेत्र व्यापक और उपन्यास का दायरा बहुत सीमित होता है। तीन बहनों की जीवन की बाल झाँकियों के साथ छब्बीस छोटी-छोटी कहानियों से संग्रहित 'यासि रासा त' भी उपन्यासकार विनोद कुमार शुक्ल की एक अद्भुत रचना है।

'यासि रासा त ' नामक उपन्यास में प्रेमचन्द पूर्व से कल्पना, प्रेमचन्दयुग से यथार्थ और प्रेमचन्दोत्तर युग की मनोविज्ञान का समावेश एक साथ हुआ है। जिस कारण 'यासि रासा त' का स्थान हिन्दी उपन्यास जगत् में अद्वितीय है। इस उपन्यास की पहली कहानी यासि और रासा के रोजमर्रा के जीवन से शुरू होती है। यहाँ यासि और रासा हर काम अपनी माँ निया से पूछ कर करती है। पर दोनों के कामों में किंचित अंतर है "दोनों में एक आदत थी सुबह उठने के बाद, तैयार होकर रासा माँ से जरूर पूछती – माँ ! मुझे कुछ करना है ?

और यासि पूछती– माँ ! मैं क्या करूँ?

माँ को पहले से सोचकर रखना पड़ता कि सुबह रासा और यासि पूछेंगी तो उन्हें क्या काम बताना है।"[2] और अंत की कहानी एक काल्पनिक घटना के साथ खत्म होती है जहाँ पाठक कभी कल्पना का पंख लगाए आकाश में उड़ता है तो कभी यथार्थ का चप्पल पहने जमीन में चलने लगता है। एक घने जंगल में चुग्गा नाम की लड़की कैद हो जाती है और नदी से आती हुई लोरमी नाम की एक बहादुर लड़की उसे बचाती है। यह बचाना भी बड़ा अजीब है। चुग्गा अपनी परछाई को खुद के बचाने का संदेश दिए उसे अपना दूत बना भेजती है और परछाई लोरमी से मिल सारा वृत्तांत उसे सुनाती है और अंत में लोरमी चुग्गा का सहारा लिए चुग्गा को बचा भी लेती है और उनके कहे अनुसार नदी की धारा उनके इशारों पर उनको अपनी मंजिल तक पहुँचाता है।

" हिन्दी में प्रेमचन्द उपन्यास को मानव-जीवन का चरित्र समझते थे और जहाँ उन्होंने कथा के चौखटे को उड़ा दिया, वहाँ वे एक महान उपन्यासकार बन गये। 'गोदान' में कथा का मोह नहीं। 'गोदान' की कथा होरी-धनिया आदि चरित्रों के साथ सहज-अकृत्रिम रूप में प्रवाहित होती है – कहीं चमत्कारिक मोड़ नहीं, चौंकाने की आकांक्षा नहीं। उनकी महान

कहानियों में भी कथा-मोह नहीं है...।"[3] ठीक उसी प्रकार विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यास 'यासि रासा त' की कथा साधारण है परन्तु चरित्रों का निर्माण एक मायाजाल बुनता रहता है। चरित्रों की निजी विशेषताएँ, उनकी मानसिकता, उनकी दिनचर्या, दूसरों से उनका व्यवहार, प्रकृति के साथ उनकी आत्मीयता, उपन्यासकार की कथा योजना, संवाद योजना, भाषा शैली, कथा-विन्यास आदि बहुत ही रोमांचित करता है। जैसे कि उपन्यास के आरम्भ में उपन्यासकार कहते है – यह "एक अद्भुत रचना है जिसका सरल मगर जादुई संगीत देर तलक आपका हाथ थामे रहता है। "[4] 2017 में प्रकाशित इस उपन्यास में जो बातें हमें मुख्यत: आकर्षित करती, वह लोक आख्यान है। लोक अर्थात् संसार और आख्यान से तात्पर्य कथा, कहानी, किस्सा से है। अत: संसार में प्रचलित कथा ही लोक आख्यान कहलाता है।

लोक आख्यान युगों-युगों से चली आ रही होती है तथा वह उस तत्कालिन समाज के बारे में बतलाती है। इसमें बच्चों से बूढ़ों तक के मनोरंजन का समावेश होता है। यह अधिकतर अलिखित होती है जो मौलिक रूप में एक से दूसरे व्यक्ति और गाँव तक फैलती जाती है। अलौकिक, पशु-पक्षी, परी, प्रकृति आदि का अधिक समावेश इन कथाओं में मिलता है। जिसमें सब मनुष्य से बात करते हुए दिखाई देते हैं। पं. रामनरेश त्रिपाठी एक जगह पर कहते हैं - 'जैसे कोई नदी किसी घोर अंधकारमयी गुफा में से बहकर आती हो और किसी को उसके उद्गम का पता न हो, ठीक यही दशा लोक कथाओं के बारे में विद्वान मनीषियों ने स्वीकारी है।' अत: निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि लोक आख्यान की कसौटी 'लोक' है 'शास्त्र' नहीं। लोक के अनुभव के साथ स्वच्छंद कल्पना का विलास विद्यमान है। प्रकृति के प्रति लोक के अनुवाद और भय की भावनाएँ विद्यमान है। लोक आख्यान में लोक की जिजीविषा और आत्मरक्षा की प्रेरणा निहित है। इसमें नवीनता की खोज की प्रवृत्ति निहित है जिसका संबंध लोक की दिनचर्या से है, किसी शास्त्र से नहीं।

विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यासों में 'यासि रासा त' का स्थान अद्वितीय है। छब्बीस छोटी-छोटी कहानियों के संग्रह से बना यह उपन्यास एक अलग ही कला लिए हमारे सामने प्रस्तुत है। इसमें सारे कलाओं का एक साथ प्रयोग देख ऐसा लगता है यह विनोद कुमार शुक्ल का 'सतरंगा धनुष' है। जो यथार्थ, कल्पना, मनोविज्ञान, प्रयोगवाद की विशेषताएँ लिए एक साथ 'यासि रासा त' के रंग में हिन्दी साहित्य के आसमान में उदित हुआ है।

तीन बहनों से शुरु हुई यह उपन्यास अपनी प्रस्तुति में अलग-अलग कड़ियों को जोड़ती जाती है। एक साधारण परिवार से शुरु हुई कहानी अंत में एक काल्पनिक घटना पर खत्म होती है। यासि और रासा दोनों बहनों में काफी असंगतियाँ देखने को मिलती है। यासि बहुत ही समझदार तो रासा को कुछ भी समझ में नहीं आता। दोनों में हर चीज को बाँट-बाँट के करने की आदत थी। जैसे – एक बार उनके मामा उनसे मिलने आते हैं तो दोनों मिलके उन्हें खाना खिलाती हैं। यासि टेबिल के ऊपर बैठी थी तो मामा को आधा खाना यासि के साथ टेबिल के ऊपर बैठकर खाना पड़ा और रासा टेबिल के नीचे थी इसलिए मामा को आधा खाना टेबिल के नीचे बैठकर खाना पड़ा। "रासा ने टेबिल के नीचे बैठने, मामा के लिए अखबार बिछाया था। मामा टेबिल के नीचे घुसे। उनकी दाहिने हाथ की उँगलियों में दाल-सब्जी लगी थी। इस हाथ को वे जमीन से नहीं छुआ रहे थे। नहीं तो हाथ धोने जाना पड़ेगा। मामा से बिछा अखबार उसल कर फट गया। रासा को यह अच्छा नहीं लगा।'[5]

"रासा ने थाली यासि दीदी को पकड़ा दी। यासि ने भात परोसा, और मामा को थाली दिखाकर पूछा – इतना भात ठीक है ? मामा का मन तो हुआ, थोड़ा और ले लें। पर वे टेबिल के नीचे से, जल्दी खाकर मुक्त होना चाहते थे। उन्होंने कहा – ठीक है। यासि ने भात से आधा भात निकाल लिया। असल में वह, आधा भात टेबिल के ऊपर अपनी बारी में खिलाना चाहती थी।"[6]

इस उपन्यास में लोक आख्यान के अनेक परिवर्तित रुप देखने को मिलता है। जैसे – आज हम पढ़ाई के लिए कॉपी-कलम, स्केच-पेन, घर के लिए अलग कॉपी स्कूल के लिए अलग, ब्लैकबोर्ड, बाहरी उपादान, पढ़ाई को और अधिक रोचक बनाने के लिए अनेक प्रकार के रंगों और उपादानों का प्रयोग करते हैं परन्तु लोक आख्यान के अनुसार पढ़ाई के लिए पहले अक्षरों को पहचानने के लिए पत्थरों का प्रयोग किया जाता है। जैसा कि हम सभी जानते है प्राचीन काल में शासकों के आदेशों को पत्थरों में ही उतारा जाता रहा है, जो शिलालेख के अन्तर्गत आते हैं। यासि-रासा के पिता वेन्द्र अपने घर अपनी बच्चियों के ऊँचाई के अनुसार काले-काले पत्थर लगवा दिए थे जिससे पढ़ाई का काम चलता था "जहाँ खाने की टेबिल थी वहाँ निया की

ऊँचाई पर एक काला पत्थर लगा था। जिसका उपयोग खुद के लिए भी दोनों (यासि की माँ और पिता) करते और बच्चों को पढ़ाने के लिए भी।"[7]

आज 21वीं सदी में हर ओर इस बात की ओर ध्यान देने को कहा जाता है कि हमें अपने आसपास पेड़-पौधे लगाने चाहिए, स्वच्छ हवा और स्वच्छ वातावरण जीवन जीने की एक प्रमुख शर्त बन गई है। प्रकृति तो बिना किसी मूल्य और शर्त के हर किसी पर अपना प्यार बरसाती रहती है और उसकी स्वतंत्रता भी निर्विवाद है फिर क्यों आज उसको बचाए रखने की कोशिश की जा रही है ? आज के समय में जितनी नई-नई बीमारियाँ हर साल निकल रही है उसका प्रमुख कारण भी कहीं-न-कहीं प्रकृति से अलगाव और प्रकृति का क्षरण है। आज के बच्चे 'शावर' को तो पहचानते है पर प्राकृतिक झरनों से वह अनजान है। आज के साहित्य में भी कलकारखानों से प्रदुषित प्रकृति का ही वर्णन मिलता है। प्रकृति ही हमें जीवन जीने की कला सीखाता है, निस्वार्थ प्रेम की भावना हमारे हृदय में जगाता है। यहाँ तक कि देश-प्रेम की भावना भी प्रकृति से उत्पन्न होती है। इस बात को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल बहुत ही सरल शब्दों में समझाते हैं – "देश-प्रेम का आरंभ प्रकृति-प्रेम से किस तरह होता है, इसे समझाते हुए आचार्य शुक्ल कहते हैं - यदि किसी को अपने देश से प्रेम है तो उसे अपने देश के मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, गुल्म, पेड़, पत्ते, कण, पर्वत, नदी, निर्झर सबसे प्रेम होगा; सबको वह चाह भरी दृष्टि से देखेगा, सबकी सुध करके विदेश में आँसू बहाएगा।...।"[8] प्रकृति का यही प्रेम और लगाव हम 'यासि रासा त' में देख पाते हैं। लोक आख्यान में प्राय: वन, जंगल, पर्वत, पंछी आदि का वर्णन मिलता है उसे ही विनोद कुमार शुक्ल ने अपने उपन्यास द्वारा हमारे सामने प्रस्तुत किया है। यह हम सभी जानते हैं कि मनुष्य सभ्यता की पहली उद्गम जंगलों से ही निकली है। आदिम मनुष्य वन में ही रहते, वन के ही फलमूल खाते और वन के पेड़ों के छाल धारण करते परन्तु सभ्यता के विकास में हम इतने आगे निकल आये कि हम सभ्यता के आड़ में प्रकृति को ही नष्ट करते जा रहे है जो प्रकृति छायावादी युग में "मनुष्य के लिए सहचरी, सखी, प्रेयसी, माँ सबकुछ हो गई। एकांतवासी कवि पंत के बाल-हृदय के साथ तो प्रकृति सखी की ही तरह घुल-मिल गई। 'छाया' से आत्मीयता जताते हुए पंत कहते हैं :

हाँ सखि, आओ बाँह खोल हम
लगकर गले जुड़ालें प्राण
फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में
हो जावें द्रुत अंतर्धान।"[9]

लोक आख्यान में प्राय: दादी-नानी की कहानियाँ प्रचलित होती है, जिसमें हवा में उड़ना, आसमान में चलना, पेड़-पौधों से बात करना, अचानक से किसी एक चरित्र या घटना का कहानी में प्रवेश आदि इस तरह की घटना प्राय: घटती रहती है जो कल्पना और तिलस्मी कथाओं का हाथ थामे पग-पग पर पाठक को आचम्भित करता रहता है। ऐसे ही अनेक घटना इस उपन्यास में घटती रहती है। जैसे – एक बार जब यासि और रासा को स्कूल से घर आने में देर हो जाती है तब वेन्द्र और निया उन्हें ढूंढने गये। बाद में सभी एक पुल के सामने मिल जाते है। तभी "मामा सायकिल से आते दिखे, जैसे वे दीदी के पुकारे जाने का रास्ता देख रहे हों। सायकिल चलाते हाथ हिलाते आ रहे थे। सिनेमा जैसा, दृश्य बदल कर मामा के आने का दृश्य हो गया।"[10]

इस उपन्यास में हर एक निर्जीव वस्तुओं को पता है उसे कहा जाना है। यह लोक आख्यान की प्रवृत्ति है जहाँ निर्जीव वस्तुएँ इंसानों से बात करते और इंसानों की बातों को सुनते-समझते हैं। बच्चू और त जिमीकन्द की तलाश में जंगल में भटक जाते हैं और इस कारण वहीं काफी समय तक इधर-इधर रास्ता ढूँढने का प्रयास करते है पर रास्ता नहीं मिला। "हर बार जंगल के पहले के रास्ते नये पेड़ों और झाड़ियाँ से मिट जाते थे। फैली हुई लताओं ने हवा में घना जाल जैसा बना लिया था। कहीं-कहीं ये लताएँ मकड़ी के जाले जैसी घनी थीं। चिड़िया उड़ते हुए आरपार नहीं हो सकती थी। उनको दूसरी तरफ फुदककर जाना पड़ता। वे उतने में ही उड़तीं जितने में खुलापन था। और यह इतना कम था कि उड़ने और फुदकने में अन्तर कम था। पक्षी बैठे हुए और घूमते हुए अधिक दिखते थे। कभी लगता कि अपने ही पिंजरे के अन्दर पेड़ उगे हैं। जगह-जगह लताओं का बना पिंजरा था – इतना घना जंगल था।"[11] तो जिस तरह त को अपने पड़ोस के तोता से बातें करने की आदत थी वह जंगल में भी एक तोता से बात करती है। " 'जिधर दाहिना हाथ उधर घूमो।' तोता इसकी रट लगा रहा था।"[12] त और

बच्चू उस तोते के कहे अनुसार घूमते रहे। जब भी कोई गड्ढा आता, कोई साँप या कोई कीट आता या फिर वे रास्ता भटकते तोता बोलता रहता और इस तरह तोता उन्हें घर तक पहुँचाता है। जहाँ इंसानों के रास्ता भटकने पर इस स्वार्थवादी समाज में बहुत कम लोग ऐसे होते है जो उन्हें सही राह दिखाते है वहीं एक पंछी इंसान को सही राह दिखा रहा है।

बच्चू गाँव में सब्जी बेचता था। वह एक दिन एक लौकी अपने ठेले पर लादे गाँव पहुँचा। वह लौकी कोई आम लौकी नहीं थी वह एक विशेष प्रकार की लौकी थी जो घड़ी-घड़ी बढ़ती ही रहती। बच्चू कहता है - "यह बढ़ने वाली लौकी है। सुबह के अँधेरे में जब तक मैं नहीं उठा मुझे उठाने ठेले की घण्टियाँ बज रही थीं। लौकियाँ बोरी के अन्दर थीं। बस यही लौकी बोरी फाड़ कर बाहर निकल आयी थी। सोचा यह बढ़ने वाली लौकी होगी। इसे ही लाया। सचमुच बढ़ने वाली है, लाते-लाते देखो कितनी बढ़ गयी। घर से निकला तो छोटी थी। तुम इस पर सवारी कर लो। "[13] त को अपने बुआ निया के घर जाना था इसलिए वह इस लौकी पर सवार हो गयी। त सुबह उठ के ही निया के घर के लिए निकल गई इस कारण उसका खाना-पीना कुछ नहीं हुआ, यहाँ तक कि उसने मुँह भी नहीं धोया था। रास्ते में एक नीम के पेड़ से दतौन तोड़ इस लौकी की सवारी से ही वह एक झरने के पास पहुँचती है। जहाँ मुँह-हाथ धो-कर वह फिर चलने लगती है। धीरे-धीरे बढ़ती हुई यह जादुई लौकी त के भूख का अंदाजा लगाए एक बगीचे में अपने बढ़ने को रोकता है। और छोटी सी त आम के पेड़ से आम तोड़ती है।

विनोद कुमार शुक्ल ने यहाँ कल्पना का हाथ ऐसा थामा है कि पाठक पल में कल्पना का पंख लगाए कभी आसमान में उड़ते है तो कभी यथार्थ का हाथ थामें जमीन में चलता है। यह कहानी है एक जलचित्र की जो त की अजिया उसे सुनाती है। जहाँ एक दुष्ट के हाथों में कैद चुग्गा को लोरमी बचाती है। चुग्गा को उस घने जंगल में खुद के सहायता के लिए कोई दिखाई नहीं दे रहा था। एक ओर घोर जंगल और दूसरी ओर नदी की धारा। अगर वह वहाँ से भागने का भी प्रयास करती तो दुष्ट सिपाही उसे पकड़ लेते इसलिए उसने एक तरकीब निकाली और अपने परछाई को कहा कि वह उसका संदेश लेकर उस जलधारा के साथ बहती हुई आगे बड़े और जहाँ उसे कोई सज्जन व्यक्ति दिखे उससे सहायता माँग ले।परछाई उसकी बात मान चुग्गा का संदेश लेकर चल पड़ी। कुछ दूर जाने पर उसे लोरमी नाम की एक साहसी लड़की दिखी जो नाव में अपने दो साथियों के साथ थी। परछाई को देख पहले तो लोरमी को भी विश्वास नहीं हुआ कि यह कोई व्यक्ति है या परछाई, फिर परछाई ने उसे चुग्गा का संदेश दिया उसने कहा "पहले मेरी बात ध्यान से सुनो। मैं एक लड़की की परछाईं हूँ और वह लड़की दूर कैद में है। उसे बचाना है। मैं उसकी परछाईं उसकी व्यथा कहने दूर से आ रही हूँ। कोई उसे बचा ले।

तुम मुझे उस लड़की तक ले चलो। मैं उसे छुड़ा लूँगी। - लोरमी ने कहा।

लोरमी ने इतनी सुन्दर परछाईं कभी देखी नहीं थी। जिसमें नाक-नक्शे, पलकें तक साफ दिखें। और दुखी होने पर आँखों में आँसू भी। अभी जब बोल रही थी तब उसके ओंठ दुख से काँप रहे थे। "[14] लोरमी नाव को लिए उस परछाईं के सहारे चुग्गा तक पहुँचती है और उसे बचा भी लेती है। नाव उनके इशारों पर उनके कहे अनुसार चलती रहती है– "विपरीत धारा में नाव कुछ आगे बढ़ती। पतवार चलाने में ताकत लगती। धारा पीछे भी ढकेलती।

लोरमी ने तब धारा से कहा – धारा तुम क्या धीमे बह सकती हो?
धारा ने जैसे सुन लिया। और वह धीरे-धीरे बहने लगी। पतवार चलाना आसान हो गया।

लोरमी ने धारा से फिर कहा जैसे आजमाने के लिए कहा – धारा ! अब तुम जहाँ हमें जाना है बहा ले चलो। एक लड़की कैद में है। उसे छुड़ाना है। कहीं देर न हो जाये।"[15] इस प्रकार लोरमी उस परछाई के सहायता से चुग्गा को बचा लेती है।

उपर्युक्त सारी बातें लोक आख्यान में मौजूद है लेकिन वर्तमान समय में उसके परिवर्तित रूपों को देख हम उन्हें विज्ञान का आविष्कार कहते है परन्तु यह लोक आख्यान का ही परिवर्तित रूप है। जिसे नये रूप-रंग देकर प्रस्तुत किया जा रहा है। विनोद कुमार शुक्ल इस उपन्यास के द्वारा प्रकृति के रास्ते, कल्पना का हाथ थामे, बहुत ही सादगीपूर्ण हमें उस लोक का दिग्दर्शन करवाते है, जो आधुनिक युग में हमसे छूटते जा रहे है।

---

[1]समालोचक रामविलास शर्मा, सह – सम्पादक – राजनाथ शर्मा और विश्वम्भरनाथ उपाध्याय - उपन्यास में यथार्थ और आदर्श की सीमाएँ, पृ. सं. - 156

[2] विनोद कुमार शुक्ल - यासि रासा त, हार्पर हिन्दी द्वारा 2017 में प्रकाशित, पृ. सं. - 14
[3] डॉ.चन्द्रकांत म. बांदिवडेकर – उपन्यास : स्थिति और गति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण -1993 पृ. सं. - 7
[4] विनोद कुमार शुक्ल – यासि रासा त, पृष्ठ फ्लैप से
[5] विनोद कुमार शुक्ल – यासि रासा त, हार्पर हिन्दी द्वारा 2017 में प्रकाशित, पृ. सं. - 25
[6] वही, पृ. सं. - 26
[7] वही, पृ. सं. - 31
[8] नामवर सिंह – छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सातवीं संस्करण– 2006, पृ. सं. - 35
[9] वही, पृ. सं. - 41
[10] विनोद कुमार शुक्ल – यासि रासा त, हार्पर हिन्दी द्वारा 2017 में प्रकाशित, पृ. सं. - 56
[11] वही, पृ. सं, - 156
[12] वही, पृ. सं. - 158
[13] वही, पृ. सं. - 167
[14] वही, पृ. सं. - 190
[15] वही, पृ. सं. - 192